अंक : 1, मार्च 2018

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
मार्च 2018, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राज़ीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–(www.amefound.org)

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 40 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाईट देखें–(www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें(www.misereor.de; www.misereor.org)

सामूहिक रूप से ज्ञान एकत्र करना

नित्या सम्बमूर्ति घाटगे

पिछले 25 वर्षों में पशुपालन अभ्यास में बहुत बदलाव आया है। अन्थरा ने आंध्र प्रदेश में पशुपालन पर स्थानीय जानकारियों को संरक्षित करने हेतु बहुत से पहल किये हैं। इसके अन्तर्गत आदिवासियों, चरवाहों तथा समुदाय की महिलाओं के पशुपालन आधारित ज्ञान व अभ्यासों को इस आशा के साथ दस्तावेजित किया गया कि जलवायु को अधिक अनुकूल करने हेतु लोग एक बार फिर इन अभ्यासों को अपना सकेंगे।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, मार्च 2018

5 सामूहिक रूप से ज्ञान एकत्र करना
नित्या सम्बमूर्ति घाटगे

9 दलहन पंचायत : दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना
आर.एस. शांतकुमार हुपर एवं के थचिनामूर्ति

15 खेत से व्यवस्था तक : हमारी मापन पट्टी कहाँ है?
अंशुमान दास

दलहन पंचायत : दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना

आर.एस. शांतकुमार हूपर एवं के थचिनामूर्ति

एक स्थाई उत्पादन, मूल्य संवर्धन तथा विपणन प्रणाली को स्थापित करने के लिए दलहन पंचायत एक एकीकृत माध्यम है। दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की ओर किसानों को अग्रसर करने हेतु तमिलनाडु में एक किसान उत्पादक समूह ने इस पहल का क्रियान्वयन किया।

खेत से व्यवस्था तक : हमारी मापन पट्टी कहाँ है?

अंशुमान दास

एक पारिवारिक किसान को एक कृषि पारिस्थितिकी के रूप में तैयार खेत से उपज, पोषण और आय के अतिरिक्त और भी बहुत से फायदे होते हैं। इसलिए, एक कृषि–पारिस्थितिकी प्रणाली के प्रभावों को जानने के लिए हमें विभिन्न मानकों की आवश्यकता होती है। विभिन्न वस्तुओं के बहुत से मानकों के ऊपर कृषि–पारिस्थितिकी के प्रभावों को मापने से प्राप्त परिणामों से उत्साहित होकर भारत, नेपाल एवं बांगलादेश के किसान विविधीकृत कृषि प्रणालियों को अपनाने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

यह अंक...

वर्ष 2018 में लीज़ा इण्डिया हिन्दी विशेषांक का पहला अंक विभिन्न अनुभवों एवं सफलताओं को समेटे हुए सामने आया है। ऐसे समय में जबकि पूरा विश्व आने वाले कल की चिन्ता से ग्रसित है, खाने और पानी के आगामी संकटों का अनुभव अभी से किया जा रहा है। गर्मी अपना रिकार्ड हर बार तोड़ रही है, ऐसे समय में अधिक पानी चाहने वाली धान व गेहूँ की परम्परागत खेती के बजाय देशज खेती को प्राथमिकता देना सम–सामयिक आवश्यकता भी है और आज की प्रासंगिकता भी।

इन्हीं संदर्भों को ध्यान में रखते हुए पत्रिका का पहला लेख श्री नित्या सम्बमूर्ति घाटगे द्वारा लिखित ''सामूहिक रूप से ज्ञान एकत्र करना'' है जिसके अन्तर्गत आज की युवा पीढ़ी को पशु चिकित्सा के देशज ज्ञान से परिपूर्ण करने तथा पारम्परिक चिकित्सा पद्धति को साझा करने के माध्यम से संरक्षित करने की बात कही गई है।

पत्रिका का दूसरा लेख श्री आर.एस. शांतकुमार हूपर एवं के. थचिनामूर्ति द्वारा लिखित ''दलहन पंचायत : दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना'' है। इस लेख के माध्यम से लेखकद्वय ने दलहन की खेती के लाभों के बारे में चर्चा करते हुए दलहन खेती के क्षेत्रफल को बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया है।

अन्तिम व तीसरे लेख के रूप में ''खेत से व्यवस्था तक : हमारी मापन पट्‌टी कहाँ है'' को पत्रिका में शामिल किया गया है जो वेल्थंगरलाइफ के श्री अंशुमान दास द्वारा लिखित है। इस लेख में श्री दास द्वारा खेती की पारम्परिक प्रणालियों एवं उनकी उपयोगिता के बारे में सविस्तार चर्चा की गई है। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर खेती निवेशों की लागत व लाभ का भी तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो निश्चित तौर पर छोटे सीमान्त व महिला किसानों एवं उनके साथ काम करने वाले स्वैच्छिक संगठनों के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में काम करेंगे।

अन्त में पत्रिका के लेखों एवं उनकी उपयोगिता पर आपके सुझावों की प्रतीक्षा में ....

• **सम्पादक मण्डल**

सामूहिक रूप से ज्ञान एकत्र करना

नित्या सम्बमूर्ति घाटगे

पिछले 25 वर्षों में पशुपालन अभ्यास में बहुत बदलाव आया है। अन्थरा ने आंध्र प्रदेश में पशुपालन पर स्थानीय जानकारियों को संरक्षित करने हेतु बहुत से पहल किये हैं। इसके अन्तर्गत आदिवासियों, चरवाहों तथा समुदाय की महिलाओं के पशुपालन आधारित ज्ञान व अभ्यासों को इस आशा के साथ दस्तावेजित किया गया कि जलवायु को अधिक अनुकूल करने हेतु लोग एक बार फिर इन अभ्यासों को अपना सकेंगे।

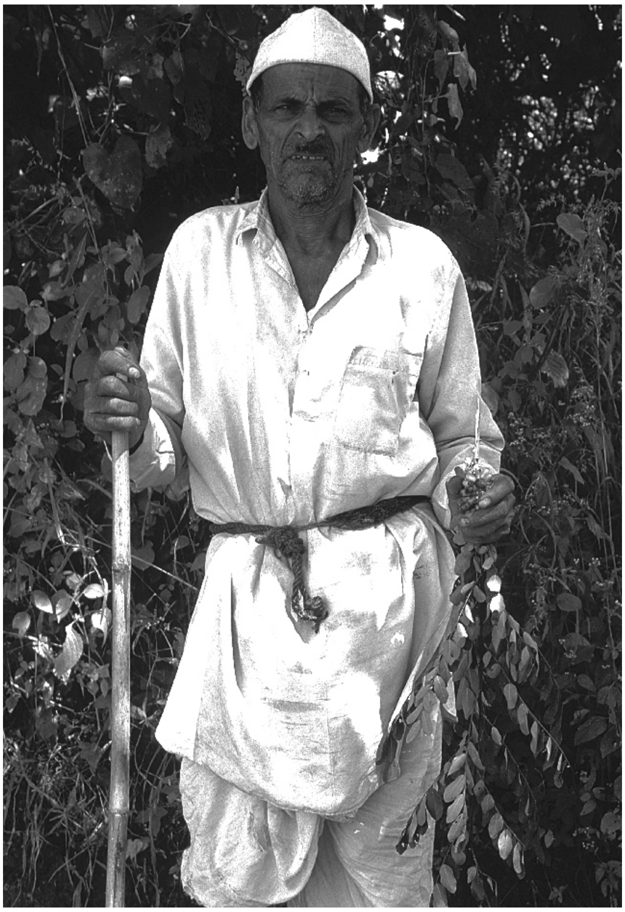

फोटो : लेखक

एक ग्रामीण पशु चिकित्सक निश्चित बीमारी की चिकित्सा के प्रति आश्वस्त

1990 के दशक के शुरूआती वर्षों में, लगभग 25 वर्षों पहले, भारत की जनसंख्या के लगभग 70 प्रतिशत लोग खेती एवं पशुपालन करते थे। पूरे उप महाद्वीप में कई लाख छोटी जोतधारकों के पास बहुत बड़ी संख्या में पशु थे। उस समय पशु चिकित्सालयों की संख्या बहुत सीमित थी और बहुत से लोगों की पहुँच पशुओं से सम्बन्धित चिकित्सकीय सुविधाओं तक नहीं थी। विशेषकर ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ पर सड़कें नहीं थीं और वहां तक पहुंचने का एकमात्र रास्ता नाव से था अथवा कई घण्टों का पैदल का रास्ता था, वहाँ पर लोगों की पहुँच पशु चिकित्सालायों तक नहीं थी, गांवों में विद्युत की सुविधा न होने के कारण पशुओं के टीकाकरण हेतु आवश्यक टीकों व दवाओं को सुरक्षित रखने के लिए फ्रिज नहीं थे, गांवों में कोई दवा की दुकान न होने के कारण सही दवाएं लेने हेतु पशुपालकों को कई–कई किमी0 पैदल चलना पड़ता था और साथ ही गांवों में शुद्ध पानी की कमी के कारण उपकरणों को शुद्ध करने की प्रक्रिया भी बहुत कठिन थी।

इन बाधाओं के बावजूद, उस समय जानवरों की मौतों की घटनाएं बहुत ही कम होती थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय पशुओं में प्लेग और चेचक की बीमारियों की वजह से बहुत से पशुओं की मृत्यु हुई, परन्तु समग्र तौर पर, देखा जाये तो बहुत से गांवों के पशु जीवित व स्वस्थ थे और वहां के किसानों के जीवन व आजीविका में उनका उल्लेखनीय योगदान था। आगे हमने पशुओं से सम्बन्धित बीमारियों के समाधानों के बारे में जानने के लिए आयुर्वेद, यूनानी और सिद्धा सभी के निजी एवं सार्वजनिक डोमेन को खंगाल डाला लेकिन अन्ततः आदिवासी और चरवाहा समुदाय की महिलाओं द्वारा किये जा रहे दैनिक अभ्यासों को जानने के बाद ही सफलता मिली। क्योंकि ये महिलाएं अपने पशुओं की अत्यधिक देख–रेख एवं स्नेह करती हैं। वातानुकूलित पुस्तकालयों में रखी मोटी किताबों की अपेक्षा इन पशुपालक समुदायों द्वारा दिन–प्रतिदिन में किये जा रहे अभ्यासों के माध्यम से पशुओं की देख–रेख से सम्बन्धित जानकारियां अधिक मिलती हैं।

हमने पशुओं को प्रभावित करने वाली 100 से ज्यादा परिस्थितियों में काम आने वाले औषधीय पौधों की 500 से अधिक प्रजातियों को दस्तावेजित किया।

महत्वपूर्ण पशुधन नस्लों तथा अच्छे जानवरों का चयन एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी। अनुभवी किसान और चरवाहे ही विभिन्न नस्लों के अच्छे जानवरों की पहचान कर सकते थे। चारा प्रजातियों, चारागाह क्षेत्रों और चराई की रणनीति पर असीमित जानकारी थी। उनके पास पशुओं के स्वास्थ्य, उपचार एवं बचाव सम्बन्धी जानकारियों की

सम्पदा थी। चरवाहों को पौध संचयन एवं प्रसंस्करण की अच्छी जानकारी थी। पशु आवास से सम्बन्धित अभ्यासों में क्षेत्र तथा नस्लों के अनुसार पर्याप्त विभिन्नता थी। हमने यह देखा कि बाह्य परजीवियों, चरम मौसमी परिस्थितियों, गर्म हवाएं / लू, तूफान आदि चुनौतियों से निपटने हेतु विभिन्न समुदायों द्वारा अलग–अलग गतिविधियां की जाती थीं। छतों, दीवारों एवं फर्श को बनाने के लिए सामग्रियों का चयन करते समय स्थानीय परिस्थितियों तथा समस्याओं को अवश्य ध्यान में रखा जाता था। पशुधन का बाजार बहुत सी पारम्परिक प्रजातियों से पटा पड़ा था।

समुदाय की जानकारी एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले ज्ञान के बीच कोई तारतम्य नहीं था। अतः इन दोनों के बीच सामंजस्य बिठाते हुए पशु स्वास्थ्य पर पारम्परिक ज्ञान नाम से एक परियोजना का उदय हुआ। यह परियोजना कई वर्षों तक चली और इसके अन्तर्गत पशु स्वास्थ्य एवं देख–भाल पर लोगों के परम्परागत ज्ञान एवं उनके द्वारा किये जा रहे अभ्यासों को दस्तावेजित किया गया, उसे मान्यता दिलाई गयी तथा लोगों के बीच प्रचार–प्रसार किया गया। चूंकि यह कार्य जैविक विविधता पर सम्मेलन के तुरन्त बाद था। अतः विभिन्न क्षेत्रों में जैविक विविधता को दस्तावेजित करने हेतु बहुत से समूह इच्छुक थे।

जमीनी सच्चाई

इन कमियों को दूर करने हेतु तथा पैरा प्रोफेशनल्स को प्रशिक्षित करने हेतु एक परियोजना आरम्भ करने की इच्छा से नवीन पशु चिकित्सा स्नातकों के रूप में हमने अन्थरा में एक संसाधन केन्द्र बनाकर पशुधन, जैव विविधता एवं लोगों की आजीविका के क्षेत्रों में सहयोग का आमंत्रण दिया। हम आदिवासी समूहों और चरवाहों, भूमिहीन समुदायों और बांध बनने से विस्थापित हुए लोगों तक अपनी पहुंच बनाना चाहते थे। सबसे महत्वपूर्ण तो यह था कि हम अपने तत्काल अर्जित किये गये नवीन जानकारियों एवं दक्षताओं को इन समुदायों की महिलाओं तक पहुंचाना चाहते थे।

दल के सदस्यों को जल्द ही यह बात समझ में आ गई कि कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की कक्षाओं एवं प्रयोग शालाओं में सीखे गये ज्ञान का बहुत थोड़ा भाग ही प्रक्षेत्र स्तर पर लागू होता है। और डिग्री लेने के बाद नया–नया काम शुरू करने वाले के लिए यह स्थिति असामान्य नहीं है और शुरू–शुरू में कार्य के शुरूआती दिनों में कुछ हतोत्साह होता है। वास्तविकता तो यह थी कि हममें से बहुत से लोगों ने ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन पर पहली बार काम शुरू किया था और हमें कठिनाई का अनुभव हो रहा था।

एक आधुनिक ज्ञान प्रणाली वाली पृष्ठभूमि से आने के कारण प्रारम्भ में हमें इन परम्परागत प्रणालियों में अंधविश्वास और विश्वास दिखता था, जिसकी कोई वैधता नहीं थी। परन्तु जब हमने केवल इसे सावधानीपूर्वक देखने और प्रणालियों को समझने का प्रयास किया तब हमें इन प्रणालियों की उपयुक्तता एवं प्रासंगिकता समझ में आयी।

प्रारम्भ में, 6 जिलों के 18 ग्रामीण युवाओं के साथ यह कार्य शुरू किया गया। प्रत्येक जिले से 3 – 3 ग्रामीण युवाओं अर्थात् कुल 18 ग्रामीण युवाओं का चयन पशु स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में किया गया और उन्हें विभिन्न विषयों पर दस्तावेजीकरण करने हेतु प्रशिक्षित किया गया। अन्थरा द्वारा प्रत्येक माह उन्हें दस्तावेजीकरण तकनीकों पर प्रशिक्षण दिया गया। इसके साथ ही उनके द्वारा पूछे गये अभ्यासों पर भी प्रशिक्षण प्रदान किया गया। उनके लिए दस्तावेजीकरण करना हमेशा ही सरल नहीं रहा। फिर भी, दल के अन्य सदस्यों द्वारा लगातार किये गये भ्रमणों, गांव के परम्परागत पशु वैद्यों के साथ नियमित बैठकों तथा समूह चर्चाओं के माध्यम से उन्हें दस्तावेजीकरण करने में काफी सहायता मिली।

हमारे दल ने निरीक्षण तथा दस्तावेजीकरण को सावधानीपूर्वक विस्तार से सीखा। उन्होंने सकारात्मक पूर्वाग्रहों को भी नहीं सीखा। अब उनके पास ज्ञान की आधुनिक प्रणाली और अन्य बहुत सी दूसरी स्वीकार्य प्रणालियां थीं।

परम्परागत ज्ञान का दस्तावेजीकरण करना

ये महसूस किया गया कि ये जानकारियां या ज्ञान सिर्फ अभ्यास में ही हैं, इनके ऊपर कोई प्रचलित ग्रंथ नहीं हैं, जो इनको स्थाईत्व प्रदान कर सकें। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमने ज्ञान को साझा करने तथा अनुभवों व ज्ञान के आदान–प्रदान हेतु देशज पशु चिकित्सकों की बैठकें आयोजित कीं। लोकप्रिय प्रचलित धारणाओं के विपरीत, इन देशज पशु चिकित्सकों ने इन बैठकों में प्रसन्नतापूर्वक सहभागिता की और अपने ज्ञान को साझा किया। उनका मानना था कि इससे उन्हें दूसरों से नये विचारों तथा दृष्टिकोणों को सीखने का भी मौका मिला। उन सभी में एक बात सामूहिक थी – उनका मानना था कि उनके ज्ञान को समुचित मूल्य और सम्मान नहीं मिल रहा है, जिससे उन्हें एक बार भी खुशी मिले। वे इस बात से दुखी थे कि उनके मरने के बाद यह ज्ञान हमेशा के लिए खो जायेगा और यही कारण था कि वे दूसरों से इस ज्ञान को साझा करने के लिए उत्सुक थे। चिकित्सक यह भी चाहते थे कि उनके ज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए और इसीलिए वे उस समूह में इसे साझा करना चाहते थे, जिन्हें इस ज्ञान की आवश्यकता हो, अथवा जिनपर वे विश्वास कर सकें।

इसलिए, सभी चरणों में हमने अपने साथ ज्ञान साझा करने वाले चिकित्सकों तथा अन्य दूसरे लोगों को बेहद सावधानी बरतते हुए आश्वस्त किया कि उनके द्वारा साझा की गयी जानकारियों को सिर्फ व्यक्तिगत लाभ अथवा कुछ लोगों को लाभ दिलाने के लिए नहीं दस्तावेजित किया जा रहा है, वरन् इसका लाभ एक बड़े समूह अथवा समुदायों को मिलेगा। ग्रामीण युवाओं को इन चिकित्सकों से सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया ताकि वे बहुत सावधानीपूर्वक उनके द्वारा अपनायी गयी पद्धतियों को देख व सीख सकें।

पशुधन नस्लों को सावधानीपूर्वक दस्तावेजित किया गया और महत्वपूर्ण गुणों को दर्ज किया गया। चारा प्रजातियों, उनका उपयोग एवं चराई रणनीति को दस्तावेजित किया गया। हमने पशुओं को प्रभावित करने वाली 100 से ज्यादा परिस्थितियों में काम आने वाले औषधीय पौधों की 500 से अधिक प्रजातियों को दस्तावेजित किया। समुदायों के बीच में अत्यन्त सम्मानजनक स्थिति प्राप्त देशज पशु चिकित्सकों को कुछ निश्चित बीमारियों के इलाज के बारे में अत्यधिक आश्वस्त थे। फिर भी, उन्होंने हमारे समूह के साथ ईमानदारी से इस बात को स्वीकार किया कि कुछ बीमारियों के बारे में उन्हें भी अच्छी जानकारी नहीं थी। उनके पास टीकाकरण और टीकाकरण कार्यक्रमों से सम्बन्धित जानकारियों एवं सूचनाओं का अभाव था। लेकिन, वे इसके बारे में हमारे दल से सीखने हेतु बहुत खुश थे।

पशु चिकित्सकों, वनस्पतिशास्त्रियों, आयुर्वेद चिकित्सकों, मानवविज्ञानियों तथा समाजशास्त्रियों की एक बहु अनुशासनिक तकनीकी समिति द्वारा अनुमोदित प्रक्रिया का उपयोग करते हुए हमने कुछ यथोचित अभ्यासों का चयन किया और उन्हें दस्तावेजित किया। विशेषकर अध्ययन के लिए डिजाइन किये गये एक प्रोटोकाल का उपयोग करते हुए इन अभ्यासों की वैधता भी जांची गयी। हाउसिंग अभ्यासों के फोटो लिये जाने तथा उनका विश्लेषण करने में पर्याप्त सावधानी बरती गयी। हमने पशु बाजारों का भ्रमण किया और वहां की गतिविधियों को भी दस्तावेजित किया।

हमने लगभग उन सभी को दस्तावेजित किया, जो अन्य कहीं भी नहीं लिखे गये थे। युवा पीढ़ी अपने बुर्जुगों द्वारा किये जा रहे कार्यों को देख–देख कर ही इन अभ्यासों व गतिविधियों को सीख रही थी और इस प्रकार ये अभ्यास व गतिविधियां एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती रही थीं।

यहां तक कि जब हम दस्तावेजीकरण कर रहे थे, उस समय भी तेजी से हो रहे शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण भू–उपयोग में परिवर्तन होने से बहुत सी मूल्यवान प्रजातियां समाप्त हो रही थीं। हमने जल्द ही यह महसूस किया कि पर्यावरण, नीतियों तथा पशुपालन में परिवर्तन के साथ ही देशज पशु चिकित्सकों एवं उनके साथ उनकी मूल्यवान ज्ञान सम्पदा भी समाप्त हो जायेगी। अतः यह अति आवश्यक है कि उनके पास मौजूद ज्ञान को

पारम्परिक पशुचिकित्सक स्थानीय ज्ञान का भण्डार हैं

फोटो : लेखक

एक पशु स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता नाथू वालगुडे की भैंस एक दिन आधी रात को बीमार पड़ गयी। वह फूल गयी थी, ऐसा लग रहा था कि वह जुगाली कर रही है। पशु चिकित्सक के पास जाने के लिए बहुत देर हो चुका था और अगर उसे इससे आराम नहीं मिलता तो बहुत संभव था कि वह सुबह दूध नहीं देती। बहुत अंधेरा होने के बाद भी वह अपने घर से बाहर गया और कुछ जड़ी– बूटियां खोद कर लाया। सौभाग्य से, नाथू उस दल का सदस्य था, जो विभिन्न बीमारियों के लिए उपयुक्त औषधीय पौधों को सुखाकर उसका पाउडर बनाते थे। उसने इस बीमारी के लिए ब्लैक हनी झाड़ी की सूखी पत्तियों से तैयार पाउडर का उपयोग किया। उसे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि भैंस बहुत तेजी से ठीक होने लगी थी आर वह सुबह दूध निकाल सकता था। उसके पिता एक अनुभवी किसान थे, वे इस परिणाम से बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि पहले बहुत सी भैंसें इस बीमारी से कई–कई घण्टों तक परेशान रहती थीं।

संग्रहित व दस्तावेजित कर एक ऐसे सार्वजनिक डोमेन में डाल दिया जाये, जहां से यह सर्व सुलभ ढंग से प्राप्त हो सके। परम्परागत ज्ञान में आधुनिक विज्ञान का सम्मिश्रण करते हुए ज्ञान की ऐसी प्रणाली विकसित की जाये जो सुरक्षित हो, आसान हो, सबकी पहुँच में हो और आसानी से उपयोग की जा सके। अन्थरा में पशु चिकित्सकों, किसानों, देशज पशु चिकित्सकों, वनस्पतिशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, कम्प्यूटर प्रोग्रामर्स एवं विकास कार्यकर्ताओं को मिलाकर बने एक दल ने इस पर सामूहिक ढंग से काम करते हुए पशु स्वास्थ्य, पशु भोजन, पोषण, पशु आवास, प्रबन्धन एवं नस्ल जैसे विभिन्न विषयों की प्रजातियों पर ज्ञान का एक केन्द्र तैयार करने का काम किया।

फिर भी, स्कुअड पेटेण्ट कानूनों व निष्कर्षकारी व शोषण एजेन्सियों से भरी पड़ी इस दुनिया में प्रत्येक को इस बात के लिए सावधान रहना होगा कि इस ज्ञान का उपयोग सिर्फ कुछ प्रमुख समूहों द्वारा अपने लिए ही नहीं किया जायेगा। इस तथ्य को सामने रखते हुए हमने इन दस्तावेजों को स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित करने का प्रयास किया ताकि ग्रामीण समुदायों की पहुँच इन तक आसानी से हो सके। प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया और अभी भी स्थानीय संगठनों द्वारा इस तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं जहां पर लोग अपने ज्ञान व जानकारियों को नियमित रूप से साझा करते हैं। हम एक डिजिटल पोर्टल बनाने की प्रक्रिया में संलग्न हैं, जहां पर इस ज्ञान को अपलोड किया जा सके।

पशुपालन अभ्यासों में पिछले 25 वर्षों में व्यापक बदलाव आया है। पशुपालन में औद्योगिक प्रणालियों के शामिल होने से छोट किसानों एवं उनकी गृहवाटिका के सामने खतरा उत्पन्न हो गया है। पशुधन उत्पादन प्रणालियां, इन प्रणालियों से सम्बद्ध जैव विविधता, पशुधन उत्पादों एवं उप उत्पादों, औषधीय पौधों तथा चारा पौधों की प्रजातियां धीरे–धीरे विलुप्त हो रही हैं। इसके साथ ही देशज पशु चिकित्सा एवं पशु चिकित्सक भी समाप्त होते जा रहे हैं। चारागाह भूमि और घास के मैदानों की जगह एक्सप्रेस हाइवे तथा औद्योगिक इकाईयां बनती जा रही हैं।

हम आशा करते हैं कि हमारे द्वारा किताबों, फोटोग्राफों, प्रकाशनों एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के रूप में तैयार किये गये सामूहिक ज्ञान लोगों को एक बार फिर से पुराने दिनों की याद दिलायेंगे और शायद एक दिन जब जलवायु अधिक अनुकूल हो जायेगा, उस दिन कुछ प्रणालियां, जो अभी भी क्रियाशील हैं, वे शायद एक बार फिर समाज और पर्यावरण के लिए उपयोगी होंगी।

सन्दर्भ

घाटगे एन.एस., रामदास एस.आर. एवं अन्य, **''ए सोशल अप्रोच टू द वैलिडेशन ऑफ ट्रेडिशनल वेटिरनरी रेमिडीज– द अन्थरा प्रोजेक्ट''**, 2002, ट्रापिकल एनिमल हेल्थ एण्ड प्रोडक्शन 34 (2002)

अन्थरा, **''इन्डीजिनस नॉलेज एप्लीकेशन्स फॉर लाइवस्टाक केयर''**, 2004, प्रोसिडिंग ऑफ ए नेशनल वर्कशाप, 14–17 सितम्बर, 2004

Co-creation of knowledge
LEISA INDIA, Vol 18, No. 1, March 2016

एम.एस.एस. आर.एफ.

दलहन की खेती की शपथ लेते किसान

दलहन पंचायत

दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना

आर.एस. शांतकुमार हूपर एवं के थचिनामूर्ति

एक स्थाई उत्पादन, मूल्य संवर्धन तथा विपणन प्रणाली को स्थापित करने के लिए दलहन पंचायत एक एकीकृत माध्यम है। दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की ओर किसानों को अग्रसर करने हेतु तमिलनाडु में एक किसान उत्पादक समूह ने इस पहल का क्रियान्वयन किया।

जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की अपनी निहित क्षमता तथा मौसमी उतार–चढ़ाव में बने रहने की सक्षमता के चलते दलहन परती भूमि को उर्वर बनाने तथा निम्न भूमि की मृदा उर्वरता को उन्नत बनाने का एक समाधान है। पोषण से भरपूर तथा विपरीत परिस्थितियों में उगने की क्षमता के कारण सीमान्त जमीनों के छोटे व निर्धन किसानों के लिए दलहनें एक आदर्श फसल हैं।

देखा जा रहा है कि दलहनों के क्षेत्र और उत्पादन में लगातार गिरावट आती जा रही है। सीमान्त भूमियों पर वर्षा आधारित स्थिति (rainfed condition) में उगाये जाने के कारण दलहन उत्पादन को बहुत सी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। क्षेत्र स्थिरीकरण, कम उत्पादकता, निवेशों की समय से अनुपलब्धता, कीट–व्याधियों के प्रति संवेदनशीलता, अपर्याप्त भण्डारण और बाजार से जुड़ाव का न होना, मूल्य अस्थिरता, फसल बीमा का अभाव आदि इनमें से कुछ प्रमुख बाधाएं हैं। भारत में प्रति व्यक्ति दलहन की उपलब्धता बहुत ही कम अर्थात् 33 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है, जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन की संस्तुति के अनुसार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति को 80 ग्राम दलहन की उपलब्धता होनी चाहिए। दलहन की घरेलू माँग को पूरा करने के लिए सरकार को बाहर से दालें / दलहन आयात करने हेतु मजबूर होना पड़ रहा है।

एम.एस.एस. आर.एफ.

बैठक करती महिलाएं

उत्पादकता को बढ़ाने और दलहनों को आम आदमी के लिए सर्व सुलभ बनाने हेतु सरकार ने राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन – दलहन कार्यक्रम के माध्यम से 14 राज्यों के 171 जिलों में उन्नत तकनीकों एवं प्रक्षेत्र प्रबन्धन अभ्यासों को प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। हाल ही में, किसानों को प्रोत्साहन देने के क्रम में भारत सरकार ने दलहनों के प्रति कुन्तल पर रू0 200.00 का बोनस देने की घोषणा की है।

भारत मोरक्को खाद्य दलहन पहल (आईएमएफएलआई) के माध्यम से एम एस स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन (एमएसएसआरएफ) ने दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता लाने के लिए भारत के दो राज्यों तमिलनाडु व उड़ीसा में दलहन पंचायत को बढ़ावा दिया। ओ सी पी फाउण्डेशन, मोरक्को ने भारत और मोरक्को में विभिन्न सहयोगियों के साथ दक्षिण–दक्षिण सहयोग – भारत मोरक्को खाद्य दलहन पहल के माध्यम से एक कार्यक्रम को चलाया। तमिलनाडु में इस कार्यक्रम को एमएस स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन ने सम्पन्न किया।

दलहन पंचायत

पुडुकोट्टाई जिले के अन्नावसल विकासखण्ड में अवस्थित एडियापट्टी पंचायत तमिलनाडु के सबसे शुष्क क्षेत्रों में से एक है। यहां पर 95 प्रतिशत किसान छोटी जोत के हैं। पंचायत में आंशिक रूप से सिंचाई का आश्वासन देने हेतु 79 खुले कुंएं हैं। यहाँ धान, मोटे अनाज, ऊर्द एवं मूंगफली मुख्य रूप से उगाई जाती है। केवल कुछ किसान लगभग 30 एकड़ खेत में दलहन की खेती करते हैं। वर्षा आधारित बहुत से खेत जो पहले परती रह जाते थे, अब उन पर जैव औद्योगिक वाटरशेड गतिविधियों के तहत् खेती होने लगी हैं।

वर्श 2012 में इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड का प्रारम्भ किया गया और किसानों के लिए बाजार से सम्बन्धित मुद्दों पर सामूहिक रूप से काम करने के लिए इसे जनवरी 2015 में पंजीकृत किया गया। एडियापट्टी पंचायत सहित 5 पंचायतों के 1000 अंशधारकों को मिलाकर इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की गयी। एडियापट्टी के 180 किसान संगठित किसान के तौर पर इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड से जुड़े हैं। इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड स्थाई उत्पादन, मूल्य संवर्धन और विपणन को बढ़ावा देने के माध्यम से किसानों की आय में वृद्धि करने के लिए मुख्य तौर पर चार मूल्य श्रृंखला आधारित उद्योगों – दलहनों, जैविक सब्ज़ियों, एकीकृत दुग्ध एवं मुर्गी पालन उद्योग पर केन्द्रित है।

वर्ष 2013 में, पूरे पंचायत ने बड़े पैमाने पर दलहन की खेती करने हेतु एक प्रस्ताव पारित किया। उन्होंने यह निश्चय किया कि एक ऋतु में गांव की कुल खेतिहर क्षेत्रफल 474 एकड़ पर दलहन की खेती ही की जाये। सदस्यों ने रबी ऋतु में प्रमाणित दलहन बीज उत्पादन का प्रदर्शन सफलतापूर्वक किया।

दलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से दूरस्थ संवेदी उपकरण का उपयोग करते हुए पूरे पंचायत के सभी 10 गांवों का डिजिटाइड मानचित्र तथा रणनीतिक योजना विकसित की गयी। दलहन उत्पादन के नियोजन व निगरानी का कार्य पंचायत तथा इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड दोनों ने मिलकर किया। पंचायत ने ग्राम्य ज्ञान केन्द्र के लिए बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराईं तथा कृषि से सम्बन्धित उपकरणों को किराये पर लिया। जबकि खेती कार्यों में तकनीकी सहयोग प्रदान करने का कार्य राष्ट्रीय दलहन शोध संस्थान, वम्बन, कृषि विभाग तथा एम0एस0स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन ने किया।

इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड को विभिन्न फसलों की मूल्य श्रृंखला विश्लेषण पर आधारित एक व्यापार माडल के तौर पर प्रोत्साहित किया गया। सभी गतिविधियां इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड के माध्यम से सम्पादित की जाने लगीं। इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड की भूमिका को निम्नवत् देख सकते हैं :–

- गुणवत्तापूर्ण बीजों, जैव उर्वरक, कृषिगत उपकरणों को किराये पर लाना आदि निवेशों की आपूर्ति करना।
- उत्पादों की खरीद, भण्डारण एवं विपणन सम्बन्धित गतिविधियां सम्पादित करना।
- बैंकों से जुड़ाव स्थापित कर लोगों की ऋण तक पहुँच सुनिश्चित करना।
- ग्राम्य ज्ञान केन्द्र को सशक्त बनाकर लोगों की पहुँच जानकारी तक सुनिश्चित करना।

- मूल्य संवर्धन हेतु उत्पादों के प्रसंस्करण में सहयोग देना।
- विभिन्न हितधारकों एवं एम0एस0 स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन के साथ जुड़ाव स्थापित करना।

सघन जागरूकता अभियानों, सहभागी दलहन प्रजाति चयन प्रक्रियाओं के माध्यम से दलहन की खेती पर जानकारी निर्माण, किसान विद्यालयों के संचालन, किसान प्रक्षेत्र दिवसों का आयोजन, कृषि उत्पादक समूहों के माध्यम से चर्चा हेतु मंच उपलब्ध कराकर तथा स्वयं की उत्पादक कम्पनी को स्थापित करते हुए विपणन विकल्प सुनिश्चित करना, उत्पादक कम्पनी द्वारा उत्पादों का अच्छा मूल्य मिलने की संभावना को बढ़ाने आदि विभिन्न पहलों के माध्यम से किसानों को दलहन की खेती करने हेतु प्रोत्साहित किया गया। उनमें से कुछ पहलों को यहां पर विस्तार से बताया गया है–

किसान सहभागी दलहन प्रजाति चयन परीक्षण

स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बेहतर प्रदर्शन करने वाली दलहन प्रजातियों की पहचान करने के लिए इस क्षेत्र में कुल 41 किसान सहभागी दलहन प्रजाति चयन परीक्षणों का आयोजन किया गया। इन प्रजातियों को कृषि विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों एवं किसानों सहित विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किया गया। प्रत्येक किसान सहभागी दलहन प्रजाति परीक्षण में फसलों के पांच निर्णायक चरणों में 20 प्रगतिशील किसानों को शामिल किया गया। काली उर्द के क्षेत्र में वम्बन 4 एवं 6 तथा एम0डी0यू0 1 ने बेहतर परिणाम दिया, वम्बन 3 एवं को 8 ने हरी उर्द के क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन किया और को 6 तथा एलआरजी 41 ने मसूर के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन किया। प्रत्येक परीक्षण के बाद किसान प्रक्षेत्र दिवसों का आयोजन किया गया ताकि फसल के पांच निर्णायक वृद्धि चरणों के दौरान 10 उल्लेखनीय मानकों के आधार पर किसानों को बेहतर प्रजाति का चयन करने का अवसर मिल सके।

तालिका 1 : प्रजातिगत चयन परीक्षण 2015-2016

दलहन की फसल	परीक्षित दलहन प्रजाति	बेहतर प्रदर्शन करने वाली प्रजाति
काली उर्द	**खरीफ :** वीबीएन 4, एडीटी-5, एमडीयू-1, **रबी :** वीबीएन 4, वीबीएन 6,	खरीफ एवं रबी : वीबीएन 4
मूंग	**खरीफ :** को-8, वीबीएन 3, वीआरएम-1 **रबी :** वीबीएन 3,को-8, वीआरएम-1, बीजीएस9, एमएल618	**खरीफ :** को8 एवं वीआरआई3, **रबी :** वीबीएन 3
मसूर	**खरीफ :** 37 एकड़ में मूंगफली के साथ अन्त: खेती **रबी :** वीबीएन 2, आईसीपीएल-1124, 161, 20335, 88039	**रबी :** आईसीपीएल 88039
मूंगफली	**खरीफ :** को-8,पोलाची-1, वीआरआई-2 **रबी :** वीआईआई2, के6, को4, टीएमवी 7, जीजी-2	**खरीफ :** को7 एवं वीआरआई2 **रबी :** वीआरआई2

जलवायु स्मार्ट कृषि अभ्यासों को प्रोत्साहित करना

चावल की खेती के बाद अवशेष बचे खेतों में दलहन की खेती को प्रोत्साहित किया गया और इस प्रकार पहले की अपेक्षा 40 प्रतिशत अधिक खेती पर दलहन उत्पादन किया जाने लगा है। दलहन की कम अवधि की प्रजातियों को मुख्य / कैच फसल के तौर पर प्रदर्शित किया गया। इससे परम्परागत प्रजातियों की अपेक्षा अतिरिक्त आय के साथ-साथ उत्पादकता में 30 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है।

नये-नये उन्नत विधि से खेती करने वाले किसानों द्वारा प्रजातिगत बदलाव की दर में 70 प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। इस हेतु निवेश एवं ऋण का सहयोग इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड से प्राप्त हुआ। किसानों को नवीन उन्नत प्रजातियों एवं जलवायु परिवर्तनों पर आधारित अभ्यासों के साथ-साथ एकीकृत फसल प्रबन्धन अभ्यासों के उपर दक्ष किया गया।

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड, मुम्बई, एशिया इनीशियेटिव्स, यूएसए द्वारा सीएसआर के अन्तर्गत प्राप्त अनुदानों से 30 से भी अधिक कुंओं को पुनर्जीवित किया गया ताकि विशेषकर रबी ऋतु में गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन के लिए दलहन की खेती में सिंचाई हेतु पानी का न्यायोचित बंटवारा किया जा सके। इससे 50 एकड़ से भी अधिक परती पड़ी जमीनों पर खेती की जा रही है।

फोटो : लेखक

उर्ध्वाधर चयन परीक्षण में भाग लेते किसान

किसान विद्यालयों में किसानों को नवीन जलवायु स्मार्ट कृषि तकनीकों जैसे गुणवत्तापूर्ण बीज तक पहुँच बनाना, कीट एवं बीमारी सहनशील प्रजातियों की खेती करना आदि गतिविधियों के ऊपर प्रशिक्षित किया गया। साथ ही मृदा स्वास्थ्य कार्ड आधारित संस्तुतियों के माध्यम से पोषण प्रबन्धन, बीज उपचार, डीएपी का फोलेर स्प्रे, दलहन वाण्डर (पोषण एवं वृद्धि नियन्त्रक के साथ एक बूस्टर), पंक्ति से पौध रोपण, अन्तः फसल, जल प्रबन्धन, प्रसंस्करण आदि पर भी किसानों को प्रशिक्षित किया गया।

किसान प्रक्षेत्र दिवसों के माध्यम से किसानों, वैज्ञानिकों, परियोजना कार्यकर्त्ता एवं सरकारी विभाग के स्टाफ सभी ने दलहन उत्पादन के अनुभवों को आपस में साझा कर उसका विस्तार किया। विभिन्न दलहनों के उत्पादन की वजह से उपज का स्तर बढ़ा, जो राज्य एवं राष्ट्र के औसत उपजों से 50 प्रतिशत से भी अधिक हो गया।

इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड द्वारा प्रबन्धित मूल्य श्रृंखला विश्लेषण पर आधारित ''दलहन जैव पार्क'' से दलहन की खेती में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है और उपभोक्ता से किसानों का अच्छा दाम भी मिलेगा।

बीज प्रणाली एवं प्रशासन को प्रोत्साहन

गुणवत्तापूर्ण बीज आपूर्ति के लिए एक पूर्णतया क्रियाशील एवं स्थाई दलहन बीज आपूर्ति प्रणाली का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसान के स्तर पर प्रमाणित/सत्यापित बीज की मांग को पूरा करने के लिए, इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड के माध्यम से एक दलहन बीज मूल्य श्रृंखला प्रणाली स्थापित की गयी। बीज प्रतिस्थापन के दर में 40 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई। इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड द्वारा लगभग 10 टन गुणवत्तापूर्ण बीजों का उत्पादन एवं भण्डारण किया गया। इसे पुनः सरकारी एजेन्सियों द्वारा प्रमाणित किया जायेगा। इस प्रकार, कम लागत, नवीन बीज प्रणालियों तथा किसान सहभागी प्रजाति चयन के माध्यम किसानों की पसंदीदा प्रजातियों का चयन किया गया, जिसने पुरानी प्रजातियों का स्थान ले लिया और उपज में उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए।

त्रिस्तरीय पुरड्यू उन्नत फसल संग्रहण बैगों में बीजों को एकत्रित किया जा रहा है। ये बैग मूल रूप से पुरड्यू विश्वविद्यालय द्वारा बनाये गये हैं और पहले इनका प्रदर्शन किया जा चुका है। बीज भण्डारण के पहले वाले तरीकों में कीटों का आक्रमण हो जाता था। जबकि अभी इस तरीके में कीटों से कम नुकसान हो रहा है। इसके साथ इस पद्धति से बीज भण्डारण करने से बीज संरक्षित रहते हैं और ज्यादा व्यवहार में लाये जाते है।

दलहन जैव पार्क

मूल्य श्रृंखला विश्लेषण पर आधारित दलहन जैव पार्क एक पाइलट परियोजना है, जो एमएस स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन तथा अन्य हितभागियों के तकनीकी सहयोग से इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड द्वारा क्रियान्वित की गयी। इसके अन्तर्गत एक दाल मिल लगाया गया और प्रारम्भिक प्रसंस्करण किया जाने लगा। परिणामतः छोटे–मझोले किसानों को अपने उत्पाद को प्रसंस्कृत कराने में आसानी हुई, जिससे वे लाभान्वित हुए। प्रसंस्कृत दलहन एकदम साफ थी, जिसे आकर्षक तरीके से पैकिंग कर ब्राण्डेड स्वरूप में खुले बाजार में बेचा गया। विभिन्न दलहनों के लिए स्थापित व अभिनव मूल्य श्रृंखला को दस्तावेजीकरण किया जा रहा है। इससे किसान दलहन उत्पादन को उन्नत करने, विपणन करने तथा स्थाईत्व प्रदान करने में सक्षम होगा।

तालिका 2 : चना का अर्थशास्त्र 2015–2016

प्रजाति	नयी तकनीकों के साथ उन्नत प्रजाति वीबीएन 4 (रू० में)	पारम्परिक अभ्यासों के साथ स्थानीय प्रजाति टी 9 (रू० में)
गर्मी में जुताई	550	–
घर पर बनी खाद का उपयोग (2 टाली भरी)	3600	-
बुवाई से पहले जुताई (2 बार)	900	1100
बीज मात्रा (किग्रा/ हे०)	900 (6 किग्रा)	1200 (8 किग्रा)
बीज उपचार	50	–
बीज बुवाई	500 (मशीन से बुवाई)	200
निराई–गुड़ाई	600	2000
कीटनाशकों का छिड़काव	1000	500
कटाई–मड़ाई	2000	2000
कुल उपज (किग्रा/ एकड़)	350	140
कुल आमदनी (रू०/ एकड़)	31500	12600
कुल लागत (रू०/ एकड़)	10100	7000
शुद्ध आमदनी : (रू०/ एकड़)	**21400**	**5600**
शुद्ध लाभ : रू० 21400/एकड़		

ज्ञान प्रबन्धन

आईसीटी उपकरणों का उपयोग कर किसान विद्यालयों एवं किसान प्रक्षेत्र दिवसों से प्राप्त जानकारियों को ग्राम्य ज्ञान केन्द्रों पर एकीकृत करते हुए ज्ञान प्रबन्धन किया गया। प्रबन्धन का यह कार्य इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड द्वारा किया गया। कृशि उपकरणों की न्यून दर पर समय से उपलब्धता हो जाने के कारण छोटे जोतधारकों को आर्थिक लाभ हुआ। ग्राम्य ज्ञान केन्द्र द्वारा किसानों को क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित जलवायु स्मार्ट कृषि तकनीकों, फसल बीमा, मृदा स्वास्थ्य देखभाल, बाजार भाव, पौधों एवं पशु स्वास्थ्य देख–भाल चिकित्सालयों, मानसून की प्रवृत्ति एवं सरकारी योजनाओं से सम्बन्धित जानकारी समय से प्रदान की गयी। दलहन की उत्पादकता को बढ़ाने के उद्देश्य से, 2000 से अधिक किसानों को फोन–इन–कार्यक्रम, रिकार्डिंग एवं एसएमएस के माध्यम से संदेशों को भी उपलब्ध कराया गया।

निश्कर्ष

दलहन पंचायत अभियान ने यह प्रदर्शित किया है कि दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए ज्ञान प्रबन्धन के साथ नवीन दृष्टिकोण में वृद्धि, बहु–हितभागी मंच तथा नीति नियोजक नेटवर्क प्रमुख हैं। इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड द्वारा प्रबन्धित मूल्य श्रृंखला विश्लेषण पर आधारित दलहन जैव पार्क से किसानों द्वारा दलहन की खेती में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे कटाई के बाद होने वाले नुकसान में भी उल्लेखनीय कमी आयी है। ये दृष्टिकोण आपूर्ति–मांग की कमी के बीच पुल का काम करेंगे और अनाज दलहन शोध एवं विशेषकर कम एवं मध्य आय वर्ग वाले उन देशों में जहां कुपोषण की समस्या बहुत अधिक है, वहां इसकी उल्लेखनीय महत्ता है। उपज के अवरोध को तोड़कर, जैव व अजैव तनाव कारकों के प्रति सहनशील तथा दलहनों के आनुवांशिक आधार का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष–2016 में चर्चा की चुनौतियां हैं।

आभार

हम इल्लूपपुर कृषि उत्पादक कम्पनी लिमिटेड का उनके द्वारा दिये गये सहयोग तथा छोटी जोत के किसानों को लाभ दिलाने के लिए ''दलहन पंचायत अभियान'' चलाने व आगे ले जाने हेतु प्रतिबद्धता प्रदर्शित करने के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। इस परियोजना हेतु ओसीपी फाउण्डेशन, मोरक्को, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन, मुम्बई, एशिया इनीशियेटिव्स, संयुक्त राज अमेरिया एवं तमिलनाडु सरकार छोटे किसानों हेतु कृषि व्यापार कन्सोर्टियम से वित्तीय सहयोग प्राप्त हुआ, इसके लिए हम उनका आभार व्यक्त करते हैं। समग्र तौर पर दिशा–निर्देशन देने के लिए एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन के कार्यकारी निदेशक को भी धन्यवाद।

■

आर एस शांतकुमार हूपर
निदेशक, इकोटेक्नालॉजी
एमएस स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन
तीसरा क्रास स्ट्रीट, तारामनी औद्योगिक क्षेत्र, चेन्नई– 600113
ई–मेल :hopper@mssrf.res.in

Valuing under utilised crops
LEISA INDIA, Vol 18, No.2, June 2016

फसल अपशिष्टों से कोयला बनाना

बिहार में स्थित वन्य जीव अभ्यारण एक टाइगर रिजर्व पार्क है, जिसके आस–पास बड़ी संख्या में आबादी वाले गाँव हैं। इन गाँवों में रहने वाले परिवार जलौनी लकड़ी हेतु मुख्य तौर पर जंगल से प्राप्त लकड़ियों पर ही निर्भर करते हैं। इसके साथ ही यहां के किसान गन्ना और धान की खेती करते हैं और उसके अपशिष्टों को भी जलौनी लकड़ी के तौर पर उपयोग करते हैं, जिससे एक तो मृदा स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचता है और दूसरे वन भी सुरक्षित नहीं रह जाते। ऐसी स्थिति में गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप ने अपने प्रयासों से किसानों के साथ जलौनी लकड़ी के विकल्पों पर विचार किया और इसी कड़ी में फसल अपशिष्टों (गन्ना व धान का पुआल, अरहर की सूखी पत्तियाँ व डण्ठल आदि) से कोयला बनाकर उसका उपयोग करने का विचार विकल्प के तौर पर सामने आया और जी0ई0ए0जी0 के वित्तीय सहयोग से इस पार्क के निकट स्थित पाँच गाँवों में फसल अवशेष से कोयला बनाने की इकाईयां स्थापित की गयीं।

स्थानीय लोगों ने कोयला बनाने के लिए लोहे का एक फर्मा तैयार किया जो दो भागों में था। पहले भाग में कच्चा माल भरकर दबाव दिया जाता है, जिससे दूसरे भाग में कोयला तैयार होता है। कोयले में कार्बन का प्रतिशत बनाये रखने के लिए फसल अपशिष्टों को लोहे के ड्रम में रखकर पहले आंशिक तौर पर जला दिया जाता है। आंशिक रूप से जलाने के बाद कृषिगत अपशिष्टों में कुछ मिट्टी और पानी मिलाकर हाथ से अच्छी तरह सान दिया जाता है, फिर इस सामग्री को लोहे के फर्मा में डालकर कोयला तैयार करते हैं। तैयार कोयले को अच्छी तरह से सुखाने के बाद खाना बनाने के लिए ईंधन के रूप में इसका उपयोग किया जाता है।

वर्तमान में फसल अपशिष्ट से कोयला तैयार कर उसका उपयोग करने से प्रति परिवार प्रतिदिन जलौनी लकड़ी की खपत में 3.25 किग्रा की कमी आयी है।

साभार : जी०ई०ए०जी०, गोरखपुर

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2000-2016

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V.14, No.4, 2012- Combating Desertification

V.15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V.15, No.2, 2013- Farmers and market
V.15, No.3, 2013- Education for change
V.15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V.16, No.1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V.16, No.2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V.16, No.3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V.16, No.4, 2014- Family farming and nutrition

V.17, No.1, 2015- Soils for life
V.17, No.2, 2015- Rural-urban linkages
V.17, No.3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V.17, No.4, 2015- Women forging change

V.18, No.1, 2016- Co-creation to knowledge
V.18, No.2, 2016- Valuing underutilised crops
V.18, No.3, 2016- Agroecology-Measurable and sustainable
V.18, No.4, 2016- Stakeholders in agroecology

रांची के निकट धान की एक एकीकृत खेती

खेत से व्यवस्था तक

हमारी मापन पट्टी कहाँ है?

अंशुमान दास

एक पारिवारिक किसान को एक कृषि पारिस्थितिकी के रूप में तैयार खेत से उपज, पोशण और आय के अतिरिक्त और भी बहुत से फायदे होते हैं। इसलिए, एक कृषि–पारिस्थितिकी प्रणाली के प्रभावों को जानने के लिए हमें विभिन्न मानकों की आवष्यकता होती है। विभिन्न वस्तुओं के बहुत से मानकों के ऊपर कृषि–पारिस्थितिकी के प्रभावों को मापने से प्राप्त परिणामों से उत्साहित होकर भारत, नेपाल एवं बांगलादेश के किसान विविधीकृत कृषि प्रणालियों को अपनाने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

जहां तक मैं समझता हूं, कृषि पारिस्थितिकी जटिल है, लेकिन कठिन नहीं है। जब मैं एक जंगल के भीतर देखता हूँ तो मैं पाता हूँ कि वहां पर खाद्य श्रृंखलाओं का एक जटिल नेटवर्क है, जिसमें कई सारे खाद्य एक–दूसरे से मिले हुए हैं। लेकिन एक बहुत ही आधारभूत मौलिक सिद्धान्त – सहयोग के सिद्धान्त पर तैयार संरचना के आधार पर यह साधारण भी है। जिसमें न सिर्फ प्रजातियों के बीच सहयोग होता है, वरन् प्रजातियों के अन्दर भी सहयोग होता है ताकि उनकी जनसंख्या में एक संतुलन बना रहे साथ ही उनको मिलने वाली तथा बाहर निकलने वाली ऊर्जा में भी संतुलन बना रहे। इस सहयोग को लाते हुए मिट्टी के अन्दर तथा मिट्टी के ऊपर दोनों स्तरों का उपयोग करते हुए एक बहुस्तरीय जंगल डिजाइन किया गया है। यह इतने अच्छे तरीके से डिजाइन किया गया है कि किसी भी बाहरी परिवर्तन या परिवर्तन अभिकरण का जंगल की उत्पादकता पर कोई असर नहीं पड़ता और इस प्रकार हमारे द्वारा अर्थात् मानव निर्मित किसी भी कृषिगत उत्पादन प्रणाली की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होता है।

कृषि पारिस्थितिकी एक प्राकृतिक प्रणाली के बहुत करीब होती है और यह प्राकृतिक प्रणाली – सहयोग, पुनर्चक्रीकरण, बहुस्तरीय प्रबन्धन, विभिन्न प्रजातियों/पौधों के संयोजन जैसे प्रकृति के सिद्धान्तों से एकाकार होती है।

भारत, नेपाल और बांग्लादेश के 9500 खेतों में स्थाई एकीकृत कृषिगत प्रणाली परियोजना के माध्यम से बायोफार्म परियोजना को उन्नत बनाया जा रहा है। और तीन कृषि–पारिस्थितिकी सिद्धान्तों को अपनाते हुए स्थाई कृषि को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया जा रहा है –

अ) सहयोग एवं उत्तराधिकार को बनाये रखने के लिए मिश्रित / अन्तः / रिले खेती पद्धति के माध्यम से फसल चक्रीकरण में समन्वय एवं संयोजन बनाना।

ब) एक उत्पादन प्रणाली के अन्दर बहु स्तरीय स्थान तैयार करना ताकि फसलों / प्रजातियों के बीच समन्वय व पुनर्चक्रीकरण सुनिश्चित हो सके।

स) खेत पर उपतंत्रीय विविधता को बढ़ाना ताकि किसी विपरीत परिस्थिति में उर्जा का पुनर्चक्रीकरण एवं समन्वय हो सके।

मापन की चुनौतियां

उत्पादन के सम्बन्धों को समझने का अर्थशास्त्र बहुत ही सीधा सा है। यदि हम एक फसल अर्थात् धान की फसल से मिले लाभों के रूप में केवल प्राप्त उपज पर विचार करें तो उत्पादन एवं उत्पादकता की गणना करना बहुत ही सरल है। जबकि दूसरी तरफ कृषि पारिस्थितिकी में धान की उपज के अतिरिक्त हमें और भी बहुत से फायदे होते हैं। जैसे चारा / छप्पर / मल्चिंग आदि के लिए पुआल मिलता है, चारा / ईंधन के रूप में धान की भूसी का उपयोग किया जाता है, धान के पौधों की जड़ें खेत में गलने से मृदा में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि होती है तथा धान के खेत में जमा पानी में जलीय वनस्पतियां, झींगा / केंकड़ा / छोटी मछलियां आदि भी मिलती हैं, जो किसान अपने भोजन के रूप में उपयोग करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि एक कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली के प्रभावों को जानने के लिए हमें विभिन्न मानक तय करने होंगे।

तो हम उत्पादकता की गणना कैसे करते हैं?पारिस्थितिकी भूमिका कैसे होगी कि धान की फसल से जैव विविधता संरक्षण अथवा जलीय गुणवत्ता में वृद्धि होगी। हमारा विश्लेषणात्मक ढांचा एक बगीचे की फसल सघनता का आकलन नहीं कर सकता, जिससे हम 40 से भी अधिक फसलें लेते हैं और हमें पूरे वर्ष भर प्रतिदिन भोजन मिलता है। मृदा स्वास्थ्य को मापने के लिए नाइट्रोजन, पोटाश और फास्फोरस तथा जैविक कार्बन के अतिरिक्त और कोई सूचकांक हमारे पास नहीं हैं। हम एक खेती प्रणाली के स्वास्थ्य पर समग्रता के तौर पर कोई टिप्पणी नहीं कर सकते क्योंकि शायद यह एक गणितीय समीकरण के लिए भी बहुत जटिल है।

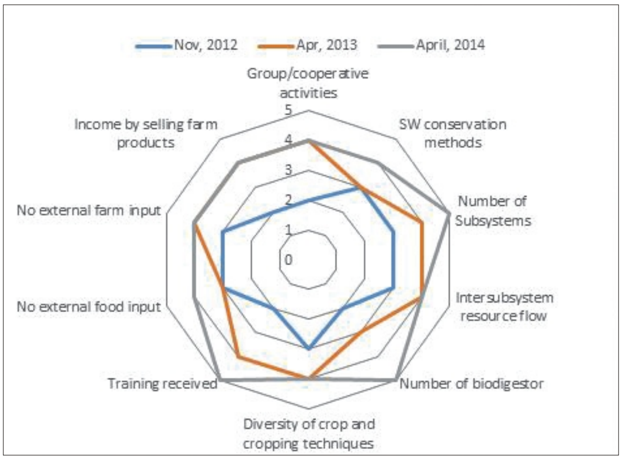

मदनपुर गाँव, देवघर के काली सिंह के साथ अभ्यास

बायोफार्म परियोजना ने सामाजिक, पारिस्थितिकी और आर्थिक मानकों के आकलन के सन्दर्भ में प्रभावोत्पादकता की पद्धति का आकलन करने का प्रयास किया। अवधारणा को स्थापित करने हेतु तीन वर्ष का समय भी बहुत कम था, लेकिन इससे प्रवृति का पता चला। यह प्रयास सामुदायिक निगरानी और आंकड़ो के विश्लेषण के माध्यम से किया गया था।

प्राप्तियों को मापना

किसी भी कार्य की प्रगति को जाँचने तथा जाँच के आधार पर बीच में ही सुधार करने हेतु सामुदायिक निगरानी पहले से ही एक स्थापित तरीका है। इसके अतिरिक्त पहले से ही एक लक्ष्य को निर्धारित कर लेने से यह सुनिश्चित करना आसान हो जाता है कि हम सही दिशा में जा रहे हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए, चक्रीय आरेख पर आधारित एक उपकरण विकसित किया गया। ताकि छोटे किसानों को कृषि पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों को अपनाने, अपने लक्ष्य को निर्धारित करने तथा उसकी निगरानी करने में सहायता हो। यह चक्र कई रेटिंग व स्कोरिंग की कल्पना तथा तुलना करने में सहायता करता है। इस चक्रीय आरेख के अन्तर्गत निम्नलिखित 10 मापदण्डों का एक सेट विकसित किया गया–

1. **समूह / सहकारी गतिविधियां :** समूहों, क्षेत्रीय समूहों, सामूहिक गतिविधियों में सक्रिय किसानों एवं सार्वजनिक भूमि पर खेती आदि संयुक्त रूप से किये जाने वाले कार्यों का विस्तार किया गया। एक समूह के रूप में कार्य करने की स्थिति में पूरे समूह के लिए हितकारी मानदण्डों को संदर्भित किया गया।

2. **मृदा व जल संरक्षण पद्धतियों को अपनाना :** मृदा एवं जल संरक्षण पद्धतियों जैसे खेत की मेड़बन्दी, वर्षा जल संचरण, मल्चिंग, खाद का उपयोग, अर्ध परिपत्र

बांध, जीरो टिलेज खेती, डायमण्ड बेड, दोहरी खुदाई, पिचर सिंचाई, गोल बेड आदि गतिविधियों का समावेश खेत में किया गया।

3. **उपप्रणालियों की संख्या :** खेत पर अपनाई गयी उप प्रणालियों जैसे बायोडिगेस्टर, मुर्गीपालन, पशुधन, वृक्षों, फसलों, जलीय जीवों आदि की संख्या में वृद्धि की गयी।

4. **उप प्रणालियों के संसाधनों का अन्तर्प्रवाह :** विभिन्न उप प्रणालियों के बीच जुड़ावों की संख्या को बढ़ाना। यह एकीकृत कृषि एवं कृषि उप प्रणालियों को दर्शाता है।

5. **बायोडिगेस्टर्स की संख्या :** इसके अन्तर्गत जैव उत्पादों/अवशेषों की संख्या शामिल है। उदाहरण के तौर पर – बायोगैस प्लाण्ट, वर्मीकम्पोस्ट पिट, कम्पोस्ट पिट, तरल खाद का उपयोग, खेत के अपशिष्टों से तैयार खाद एवं हरी खाद आदि की संख्या में वृद्धि की गयी।

6. **फसल एवं फसली तकनीकों की विविधता :** वर्तमान विविधीकृत फसल तत्वों के सन्दर्भ में खेत का श्रेणीकरण करना। इसके अन्तर्गत फसलों में फलों, दलहनों, पत्तीदार सब्ज़ियों, अनाजों औषधीय पौधों, कन्दीय फसलों आदि के प्रकार, प्रजातियों आदि को शामिल किया जा सकता है। खेती की तकनीकों में मिश्रित खेती, अन्तः खेती, फसल चक्रीकरण, रिले खेती आदि को शामिल किया गया।

7. **प्राप्त किये गये प्रशिक्षण :** वर्ष भर चलने वाले किसान विद्यालयों के माध्यम से किसानों ने बहुत से प्रशिक्षण प्राप्त किये। विस्तृत रूप से जिन विषयों पर दक्षता विकसित की गयी, वे निम्न हैं –

➢ तनावों का विश्लेषण, आजीविका चक्र, संसाधनों, दक्षताओं तथा अपने स्वयं के खेत का नियोजन करने की क्षमता पर प्रशिक्षण

➢ मृदा पोषण प्रबन्धन के विविध तरीके

➢ जल प्रबन्धन तरीके

> **कृषि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत जलवायु अनुकूलित अभ्यासों को अपनाने पर विचार किया जाता है ताकि जलवायु आधारित आजीविका स्रोतों पर लोगों की निर्भरता कम हो और इस प्रकार नाजुकता भी कम होगी।**

➢ गृह वाटिका तथा खेत में औद्यानिक तत्वों का समावेश

➢ घर पर ही मुर्गीपालन व उनके खाने का प्रबन्धन चारा सहित छोटे जानवरों का प्रबन्धन

➢ फसलों एवं पशुओं में कीट व व्याधि प्रबन्धन तथा उन्हें उन्नत बनाना

➢ समूह विकास एवं मूल्य श्रृंखला पर क्षमता विकास

8. **बाहरी खाद्य निवेश :** सब्ज़ियों, प्रोटीन आदि सहित एक संतुलित आहार के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं के लिए बाजार पर निर्भरता कम हुई।

9. **बाहरी कृषि निवेश :** बीज सहित अन्य कृषि निवेशों का बाजार से खरीदना कम हुआ।

10. **उत्पादों को बेचने से हुई आय :** मजबूरन उत्पादन बेचने की अपेक्षा अपनी मर्जी से दाम चढ़ने पर उत्पादों को बेचने वाले किसानों की संख्या में वृद्धि हुई।

प्रत्येक मापदण्ड के लिए 10 चित्रात्मक कार्ड दिये गये और किसानों से कहा गया कि वे इन कार्डों पर 0 से 5 के बीच में अंक देकर उसके आधार पर आरेख तैयार करें। उन्हें यह बता दिया गया था कि 0 का अर्थ सबसे न्यूनतम और 5 का अर्थ अधिकतम है। यह प्रक्रिया 6 माह तक लगातार दुहराई गयी। यह देखा गया कि अंक देने वाले चरण में किसानों के बीच आपस में बहुत चर्चा एवं बहस होती थी और यही अभ्यास का सबसे महत्वपूर्ण चरण होता था। अंक देने के पीछे दिये जाने वाले कारणों से बहुत सी सफल कहानियों एवं असफलताओं की बात भी सामने आयी, जिससे भविष्य में कार्य की रणनीति तय करने में मदद मिली। इस अभ्यास को समूह एवं व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर किया गया।

किसानों ने विभिन्न कृषिगत गतिविधियों, लागत एवं प्राप्तियों आदि को नियमित रूप से दस्तावेजित कर उसका रिकार्ड रखा, जिसको बाद में विश्लेषित भी किया गया। इसे शुद्ध आमदनी और अन्य मानक मानदण्डों पर भी गणना की जा सकती है, परन्तु हमने एक खेत के कृषि पारिस्थितिकी के पहलुओं का आकलन करने पर ही केन्द्रित किया। इस तरह के अभ्यास झारखण्ड के देवघर व रांची जिले, पश्चिम बंगाल के बीरभूम, बांकुरा तथा पुरुलिया जिले एवं नेपाल में चितवन के पहाड़ी क्षेत्रों व बांगलादेश के पहाड़ी इलाकों के खेतों में किया गया जहां से प्राप्त परिणामों को नीचे दर्शाया गया है –

बाहरी निवेश उपयोग में आयी कमी

	खेत से उत्पादित कृषि निवेश का प्रतिशत					
प्रतिशत में किसान	90 प्रतिशत से अधिक	80 प्रतिशत से अधिक	70 प्रतिशत से अधिक	60 प्रतिशत से अधिक	50 प्रतिशत से अधिक	50 प्रतिशत से कम
झारखण्ड 2012	0.00	4.17	20.45	22.88	16.86	35.64
झारखण्ड 2013	5.26	13.23	22.27	30.78	15.53	12.93
पहाड़ी क्षेत्र 2012	0.00	0.00	8.33	20.83	25.00	45.83
पहाड़ी क्षेत्र 2013	12.36	12.36	15.73	6.74	7.87	44.94
पश्चिम बंगाल 2012	46.67	11.67	6.67	8.33	10.00	16.67
पश्चिम बंगाल 2013	93.33	0.00	3.33	3.33	0.00	0.00

खेत की विविधता को मापना

एक कृषि पारिस्थितिकी खेत में विविधीकरण को एक महत्वपूर्ण घटना के तौर पर माना जाता है। उप प्रणाली में विविधता का अर्थ है — आय के स्रोतों में विविधता। अर्थात् एक साल में एक फसल से होने वाली आय की तुलना में अलग—अलग समय पर अलग—अलग फसलों से वर्ष भर आय होता रहे। उप प्रणालियों में खेत, बगीचा, मुर्गी पालन, पशुधन, जलीय प्रणाली, बायोडिगेस्टर, वन/सामूहिक सम्पत्तियां, पेड़, मूल्य संवर्धन हेतु सामूहिक व्यापार आदि थे। इससे प्रदर्शित हुआ कि उप प्रणाली की विविधता औसतन 3.5 थी जो कि पश्चिम बंगाल के केस में बढ़कर 8 हो गयी। जहाँ शायद जल ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और झारखण्ड तथा पहाड़ी क्षेत्रों में 5 उप प्रणालियों को आय/बायोगैस के स्रोत के रूप में स्थिर किया गया। रबी मौसम में यह सच भी है। गर्मियों में, जहाँ सामान्य तौर पर बहुत से खेत परती छूट जाते थे, वहाँ वर्ष 2014 से लगातार 2.54 स्रोतों से बायोमॉस मिलना प्रदर्शित हो रहा है। इसका आशय यह है कि झारखण्ड में आधारभूत सर्वेक्षण के दौरान मिली प्राप्तियों के अनुसार जहां सिर्फ एक फसल लिया जा रहा था, वहां अब 45 प्रतिशत लोगों ने वर्ष में 3 फसलें लेना प्रारम्भ कर दिया है। जबकि पहाड़ी क्षेत्रों तथा पश्चिम बंगाल में क्रमशः 89 प्रतिशत व 60 प्रतिशत किसान वर्ष में 3 फसलें लेने लगे हैं। यह भी देखा गया कि सामान्यतः दो से अधिक उप प्रणालियां इतना अधिक बायोमॉस उत्पादित करती हैं कि उन्हें बाजार में भी बेचा जाने लगा है।

आय वितरण

एक से अधिक उप प्रणाली होने से आय पद्धति का वितरण भी प्रभावित होता है। देखा गया कि लोगों की आय का 65 से 85 प्रतिशत मानसून पर निर्भर करने वाली फसलों एवं सब्ज़ियों से होने वाली आय से होता है। लेकिन 3 वर्षों के अन्दर, हस्तक्षेप किये जाने के बाद से पशुधन, मुर्गी पालन, मछली पालन एवं अन्य गतिविधियों की वजह से लोगों की निर्भरता जलवायु आधारित स्रोतों पर घटी है। उदाहरण के लिए, पहाड़ी क्षेत्रों में 2012 में खरीफ ऋतु में आय का वितरण इस प्रकार रहा — फसल से 32.26 प्रतिशत, सब्ज़ियों से 13.12 प्रतिशत, पशुधन से 19.77 प्रतिशत, मुर्गीपालन से 1.37 प्रतिशत, जलीय खेती अर्थात् मछली पालन से 14.71 प्रतिशत, मूल्य सवंर्धित उत्पादों से 18.60 प्रतिशत। समय के साथ पशुधन व मुर्गीपालन के विकसित होने की संभावना अधिक है। पश्चिम बंगाल में, आय उपार्जन में जलीय खेती की सर्वाधिक लगभग 34 प्रतिशत तक भागीदारी होती है। उपरोक्त आंकड़े इस बात को मजबूती प्रदान करते हैं कि कृषि पारिस्थितिकी को एक जलवायु अनुकूलित अभ्यास के तौर पर अपनाया जा सकता है और इससे लोगों की जलवायु आधारित आयजनक स्रोतों पर निर्भरता घटती है और अन्ततः लोगों की नाजुकता व जोखिम कम होता है।

आँकड़ों की कमी के कारण, यद्यपि कि उप प्रणालियों की संख्या बढ़ाने से आय में वृद्धि के बीच सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता। लेकिन देखा गया कि आय के वितरण को पूरे वर्ष समान रूप से वितरित करने पर वर्ष भर के आय में भी वृद्धि हुई।

इसी तरह खेत पर फसलों की संख्या में भी वृद्धि हुई और लोग कम से कम 2—3 और अधिकतम 4—5 तक फसल लेने लगे हैं। गृहवाटिका में भी औसतन 6—7 तरह की सब्ज़िया/पौधे दिखने लगे हैं। खेत के बड़े टुकड़ों में मुख्यतः अनाज जैसे — चावल/गेंहूं/बाजरा, दलहन जैसे — उर्द/मसूर, तिलहन जैसे — काला तिल/सरसों/ अलसी एवं सब्ज़ियां जैसे — आलू/ मिश्रित सब्ज़ियां उगाई जाती हैं। जिससे पहाड़ी क्षेत्रों के बाद पश्चिम बंगाल में लोगों की खाद्य विविधता पर सर्वाधिक व्यापक असर पड़ा है। स्थाई एवं मौसमी रूप से खेतों में उगायी जाने वाली विविध खाद्य पदार्थों के कारण किसानों की न केवल खाद्य गुणवत्ता बढ़ी है, वरन् मिश्रित विविधता की मात्रा में भी वृद्धि हुई है। 650 हेक्टेयर परती भूमि को

देवघर में एक निगरानी सत्र में समुदाय

खेतिहर भूमि में परिवर्तित किया गया है और 850 हेक्टेयर में की जाने वाली एकल खेती अब द्विफसली खेती में बदल चुकी है। भूमि की प्रकृति को बदलने में दलहनी फसलों को प्राथमिकता दी जाने लगी है।

आहार विविधता

वर्ष 2014 में भारत के झारखण्ड राज्य में आहार विविधता की गणना की गयी। इस गणना से प्राप्त परिणामों से प्रदर्शित होता है कि लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं कम से कम 5 खाद्य समूहों – सेम और मटर, बादाम और बीज, दुग्ध उत्पादन, अण्डा और फल, सब्ज़ियां और पत्तीदार सब्ज़ियां खाने लगीं हैं। प्रारम्भिक वर्ष 2001 में, अधिकांश परिवारों में स्टार्चयुक्त भोजन किया जाता था। एक प्रमुख शाकाहारी राज्य होने के कारण, यह प्रगति उल्लेखनीय है। उप प्रणालियों का अन्तर्सम्बन्ध उप प्रणालियों के बीच उर्जा / बायोमॉस के प्रवाह को दर्शाता है साथ ही सम्पूर्ण कृषि प्रणाली के भीतर एक प्रणाली की निकटता व प्रभाविता को इंगित करता है।

सामान्यतः जुड़ावों की संख्या जितनी अधिक होगी, प्रणाली उतना ही अधिक सक्षम होगा। औसत जुड़ाव जो वर्ष 2011 में मात्र 1 था, तीन वर्षों के भीतर बढ़कर 8 हो गया। बहुत से स्थानों पर तो इन जुड़ावों की संख्या अधिकतम 12 तक हो गयी। पश्चिम बंगाल में बेहतर परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। ऐसा संभवतः इसलिए है कि वहाँ पर अधिकतर समुदाय खेतिहर परिवार हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में पश्चिम बंगाल की अपेक्षा कम सफलता मिली, इसके पीछे संभवतः वनों में बायोमॉस की अधिकता के कारण यह किसानों को आसानी से मिल जाता है और इसीलिए बायोमॉस हेतु इन्हें जुड़ाव बढ़ाने की आवश्यकता नहीं हुई। लेकिन बायोमॉस के पुनर्चक्रीकृत मात्रा से यह प्रदर्शित होता है कि इनके जुड़ावों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। हालांकि स्थान के अनुसार इनकी संख्या में अन्तर है। वर्ष 2015 के खरीफ ऋतु में एक खेत की उपप्रणालियों से औसतन 7738 किग्रा0 पुनर्चक्रीकृत बायोमॉस प्राप्त हुआ था। पहले बायोफार्म परियोजना के दौरान, हमने कैलोरी के सन्दर्भ में भी प्रवाह चार्ट का उपयोग किया था, लेकिन इस बार हमने इसे सरल रखने का प्रयास किया ताकि लोगों को आसानी से समझ में आ जाये।

इस पुनर्चक्रीकरण से हमें खेत पर लगने वाली बाहरी निवेश के उपयोग को कम करने में मदद मिली। यह भी देखा गया कि विशेषकर पश्चिम बंगाल में खरीफ ऋतु के दौरान बायोमॉस का पुनर्चक्रीकरण अधिक बेहतर होता है। आधारभूत अध्ययन के दौरान समुदाय बायोमॉस का पुनर्चक्रीकरण तभी करता था, जब वह गौशाला से गोबर इकट्ठा करता था। परियोजना के दौरान बायोमॉस की परिभाषा का विस्तारीकरण हुआ और अब इसमें फसल अपशिष्टों, पशुओं के मल–मूत्र, मुर्गे–मुर्गियों की बीट, फसल अवशेष, घास आदि को शामिल किया गया। बायोमॉस बनाने की प्रक्रियाओं में ढेर और घूर गढ्ढा, बायो गोबर तैयार करना, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, तरल खाद तैयार करना, मल्चिंग आदि प्रक्रियाओं को शामिल किया गया। यदि बायोमॉस की इस मात्रा को नहीं

सी.एच.टी., बांग्लादेश में एक सामुदायिक निगरानी सत्र

पुनर्चक्रीकृत किया गया तो लोगों ने इसे या तो कहीं बाहर से खरीदा या फिर उन्हें इस खाद की कमी से जूझना पड़ा।

झारखण्ड में, वर्ष 2012 में आन्तरिक कृषि निवेश उपयोग करने वालों की संख्या 35 प्रतिशत से कम थी, जो वर्ष 2013 में 12 प्रतिशत तक कम हो गयी (तालिका सं0 1)। हालांकि धीरे–धीरे आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हुए 5 प्रतिशत किसानों के साथ खेत से ही 90 प्रतिशत निवेशों का उत्पादन किया गया। अधिक जुड़ावों तथा उच्च बायोमॉस पुनर्चक्रीकरण के साथ पश्चिम बंगाल में बेहतर परिणाम दिख रहे हैं। यह स्पष्ट प्रदर्शित हो रहा है कि किसान आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहे हैं, परन्तु अभी भी सुधार की विशाल संभावनाएं हैं।

खाद्य आत्म निर्भरता में वृद्धि

खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से देखा जाये तो अधिकांश खेतिहर परिवार खाद्य असुरक्षा स्तर पर थे। उन परिवारों को पर्याप्तता के स्तर तक ले जाना तथा अधिशेष स्तर तक जाने हेतु बढ़ावा देना एक चुनौती थी। वर्ष 2013 में 48 प्रतिशत किसान अधिशेष स्तर पर थे।

बायोमॉस उत्पादकता

आम तौर पर, एक एकल फसल से होने वाली उपज को उत्पादकता के तौर पर परिभाषित करते हैं। एकीकृत खेती प्रणाली में खाद्य सहित समग्र खेत की बायोमॉस उत्पादकता पर विचार किया गया। इसमें स्व उपभोग की गयी अथवा बाजार में बेची गयी खाद्य, चारा, ईंधन और बायोमॉस व पुनर्चक्रीकृत बायोमॉस को शामिल किया गया। वर्ष 2013 में रबी ऋतु में पहाड़ी क्षेत्रों में 12000 किग्रा प्रति हेक्टेयर और झारखण्ड में 9000 किग्रा प्रति हेक्टेयर बायोमॉस की उपज हुई, जो एक बेहतर परिणाम था। जबकि पश्चिम बंगाल में खरीफ ऋतु में बेहतर परिणाम प्राप्त हुए, जहाँ पर 8100 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर बायोमॉस की उपज हुई। भूमि बायोमॉस उत्पादकता में 2012 की अपेक्षा 2013 में गिरावट आयी, जो एक दिलचस्प प्रवृत्ति रही। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि कम परती भूमि में भी बहुत अधिक मात्रा में बायोमॉस अप्रयुक्त रह गया।

कुछ बाधाएं

प्रमाणित आँकड़ों के अभाव में एक परिवार द्वारा खेत में किये गये विभिन्न उत्पादक गतिविधियों में किये जाने वाले श्रम तथा उसमें लगने वाले समय को उत्पादकता के सन्दर्भ में गणना करना कठिन है। लेकिन विभिन्न उदाहरणों का विश्लेषण करने से यह प्रमाणित हो चुका है कि कृषि–पारिस्थितिकी खेती श्रमसाध्य होती है और खेती में पशुधन प्रबन्धन को शामिल करने से बहुधा परिवार की महिला सदस्यों पर कार्य बोझ बढ़ता है। इसलिए हमने पूरे नियोजन में जेण्डर संवेदनशीलता का खास ध्यान रखा। इसमें परिवार के सदस्यों द्वारा दूसरे के खेतों पर खेतिहर मजदूरी करने के बजाय अपने खेत पर किये गये काम के उत्पादक श्रम के दिनों को शामिल किया गया। सफल हुए अधिकांश किसान श्रम की सघनता को सकारात्मक बताते हुए समान तर्क दे रहे हैं।

सोच में बदलाव

विभिन्न प्रकारों के मानदण्डों के आधार पर कृषि–पारिस्थितिकी के प्रभावों को मापने तथा आय के अलावा भी कृषि पारिस्थितिकी से होने वाले बहुत से फायदों को किसान महसूस कर रहे हैं और ऐसा वे अपने खेत को उद्योग के तौर पर विविधीकरण करने के कारण ही महसूस कर सके हैं। विभिन्न मानदण्डों/सूचकांकों को दस्तावेजित करने तथा उनका विश्लेषण करने की क्षमता विकसित करते हुए ये किसान अपने सोच में सकारात्मक बदलाव लाने में सफल हुए हैं। और अब वे धान की एकल खेती के बजाय विविधीकृत खेती प्रणाली अपनाने की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। अब वे अपनी डायरी प्रबन्धित करने लगे हैं, और कृषि–पारिस्थितिकी खेती प्रणाली के सिद्धान्तों पर निरन्तर खेती करते हुए अपने खेत की निगरानी कर रहे हैं। प्रदर्शनों के माध्यम से किसानों को आँकड़ा एकत्रीकरण, विश्लेषण और समझने हेतु उत्साहित किया जा रहा है और शायद यही खेत से खेती करने वाली प्रणालियों की ओर जाने का एक महत्वपूर्ण रास्ता भी है।

■

अंशुमान दास
प्रोग्राम मैनेजर
वेल्थंगरलाइफ इण्डिया
ई–मेल :Anshuman.Das@welthungerhilife.de

Agroecology- Measurable and sustainable
LEISA INDIA, Vol 18, No.3, Sept. 2016